सुभद्रा

✍ श्रवण कुमार

ओफ-ओ, यह सुभद्रा भी कभी-कभी ख्वाहमख्वाह की परेशानी खड़ी कर देती है। एक तो वक्त का इसे कोई लिहाज नहीं, दूसरे, आएदिन छुट्टी करने को कहेगी। अभी कुछ रोज पहले ही तो वैष्णो देवी से लौटी है। कह गई थी—तीन दिन में लौट आएगी, लौटी छह दिन बाद। बहाने भी बड़े खूबसूरत होते हैं इसके पास। कहने लगी, 'बसवाले ने बहुत तंग किया, बीबीजी। लौटती बार जाने कहाँ-कहाँ की सवारियाँ भर लीं। बस को ऐसे घुमाता लाया कि पूछो नहीं।'

पर अब जो फिर छुट्टी करने की कह रही है। कहती है, 'गोड़ में बहुत दर्द होता है। एक दिन आराम करूँगी तो ठीक हो जाऊँगी, एक दिन बहू की तबीयत खराब बता रही थी। एक दिन उसकी समधिन ने उसे बुला भेजा था। एक दिन झुग्गी टपकने लगी थी। एक दिन कॉरपोरेशन के नल में पानी नहीं आया था। अब गिनो महीने में कितनी छुट्टियाँ कीं। सुभद्रा, यह तो तुम जानती ही हो कि एक टाइम के बरतन न मँजें तो कैसा ढेर लग जाता है। रसोई अलग गंदी-गंदी दिखने लगती है, फिर मक्खियों का डर अलग। जरा सी सू पाती हैं तो ढेरों चली आती हैं और इस कदर भिनभिनाती हैं कि भिनभिनाते-भिनभिनाते खाने में आ पड़ें तो कोई मुजायका नहीं। अब जरूरत तो पड़ती ही है बरतनों की। खुद ही एक-एक करके साफ करने पड़ते हैं। कोई एक-आध मेहमान आ जाए तो और मुसीबत। झाड़ू-पोंछा नहीं होता तब भी हर कहीं मिट्टी-ही-मिट्टी दिखती है।

सुनंदा वाकई कभी-कभी परेशान हो उठती है। गोद में चार महीने का छोटा बच्चा है। वह सोए तभी तो कोई काम हो। कई बार सोचा भी कि इस सुभद्रा की जगह यदि कोई छोटी लड़की मिल जाए—जैसी पड़ोसियों के यहाँ है—तो सारा झंझट ही खत्म हो जाए। पर मिलती कहाँ है ऐसी लड़की। यह जाने उन्हें कैसे मिल गई? बंगाली लड़की है यह। काफी मासूम है। हर काम सँभालती है। घरवाले घर पर न हों तो मजाल है, बाहर आकर किसी से रत्ती भर भी बात कर ले। बस, घर के अंदर ही बंद रहती है। और इधर हमारी यह सुभद्रा है कि दूर से ही गुहार करती आती है। फिर जरा सा छेड़ दो तो पूरी रामायण सुनाए बिना चुप न हो। पर खूबियाँ भी तो हैं इसमें! पूरी तरह आजमाई हुई है। घर में इतना सामान है। कुछ इधर-उधर भी हो जाए तो पता न चले। पर यह! घर की चाबी इसे थमा जाओ तब भी कोई खतरा नहीं। अपने मजे-मजे काम करती रहती है और करती भी बड़ी 'प्रीत' से है। अकसर गुनगुनाती भी रहती है। कभी बरतन पटकने की आवाज नहीं आई। सफाई करते समय भी हर चीज अपनी जगह पर वापस रखेगी। जब कभी झाड़-पोंछ के लिए कहा, उससे भी इनकार नहीं; हालाँकि इसका काम झाड़ू-पोंछा करना और बरतन माँजना है। बस, कमी एक ही है कि वक्त पर कभी आना नहीं और छुट्टियाँ अपने मनमाने ढंग से करनी हैं।

"भई, अब क्या काम आ पड़ा, सुभद्रा?" सुनंदा उससे पूछ रही है, "तुम जानती हो, यह छुटकू मुझे कितना तंग करता है! गोदी से जरा उतारने को हुए नहीं और इसने गला फाड़ना शुरू किया नहीं। जब कभी पालने में डालो, झट से उठ जाता है।"

"अरे, मत पूछो बीबीजी, इन छुटकुओं की। मैंने चार-चार पाले हैं। सब एक से बढ़कर एक। उसपर आदमी कुछ करे-धरे नहीं। उसे तो बस, एक ही ठरक था। जरा सा मौका देखा और आ दबोचा मुझे। सच बीबीजी, बड़ी आफत है औरत जात की!"

"तुम्हारा आदमी अब कहाँ है?" सुनंदा में थोड़ी उत्सुकता जग गई थी।

"अरे बीबीजी, कहाँ होगा? आपको बताया तो था। वह तो भगवान् को प्यारा हो गया। उसे टी.बी. हो गया था।" सुभद्रा की आँखों में अब आँसू हैं।

सुनंदा को हैरत हो रही थी कि इतनी जरूरी बात वह इतनी आसानी से कैसे भूल गई।

"यह टी.बी. कैसे हो गया था?" सुनंदा की हैरत बढ़ी हुई थी।

"क्या जानूँ, बीबीजी। गरीबी। गरीबी हर बीमारी ले आती है। गरीबी अपने आप में भी तो एक बीमारी है। हम लोग तो कीड़े-मकोड़े हैं। कीड़े-मकोड़े की तरह पैदा होते हैं और कीड़े-मकोड़ों की तरह मर जाते हैं!"

सुभद्रा जैसे कि दर्शन में उतर आई थी।

सुभद्रा के इस उत्तर से सुनंदा का जैसे कि कोई पुराना जख्म हरा हो उठा था। सुनंदा भी तो, दरअसल, एक तरह से एक गरीब परिवार से ही है। मनोज ने अगर उसे अपना न लिया होता तो वह भी न जाने किस चक्की में पिस रही होती। बेशक वह किसी-न-किसी तरह शिक्षा पा गई, पर घर में तो हमेशा कशमकश का दौर ही रहा। मुश्किल से दो जून की रोटी ही जुट पाती थी। पिता दूर के एक गाँव में प्राइमरी टीचर और माँ नगर निगम के एक छोटे अस्पताल में मिडवाइफ। बस, गनीमत यह रही कि परिवार ज्यादा बड़ा नहीं था—दो भाई और एक बहन। यानी बहन वह स्वयं थी। भाई दोनों छोटे थे। सबकी पढ़ाई-लिखाई। क्या हुआ, अगर वे सरकारी स्कूल में भी पढ़ते थे! साँस तो घुटी-घुटी ही रहती थी न! न पिता कभी ढंग के कपड़े पहन पाए, न माँ। फिर बच्चों के पास ढंग के कपड़े होने का सवाल ही नहीं उठता था।

कॉलेज में जब दाखिला मिला तब सुनंदा के भीतर कितनी घबराहट थी। वह अपने को हमेशा पिचका हुआ महसूस करती और सब से बच-बचकर निकलती। वहाँ लड़के-लड़कियाँ साथ-साथ ही पढ़ते थे। पर ताज्जुब, कोई लड़का उसकी तरफ देखता तक नहीं था। क्या वह इतनी उपेक्षणीय थी? आखिर जवानी तो अपने आप में ही एक आकर्षण होती है। पर वह इतनी जवान भी कहाँ दिखती थी। अच्छी परवरिश का अपना ही महत्त्व है। जिन बच्चों की परवरिश ठीक से होती है उन्हें देखो, क्या कद निकालते हैं और चेहरों पर भी कैसी चमक दौड़ने लगती है।

पर कुछ चमक तो अब सुनंदा के चेहरे पर भी आने लगी थी, क्योंकि कॉलेज का वातावरण उसमें आत्मविश्वास जो भरने लगा था। फिर जैसे ही वह कॉलेज से निकली, उसे मनोज के कार्यालय में काम भी मिल गया। तब तक वह मनोज को नहीं जानती थी। उसे वहाँ बतौर ऑफिस असिस्टेंट रखा गया था और उसे मनोज के साथ ही काम करना था। मनोज प्रबंधक के पद पर था और अच्छी तनख्वाह पा रहा था। उसे सुनंदा में कुछ विशिष्टता-सी दिखी। उसे लगा, यह लड़की बहुत जहीन है और प्रोत्साहन पाकर संस्थान के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। वाकई प्रोत्साहन पाकर सुनंदा का आत्मविश्वास और पनपने लगा था और उसके चेहरे की चमक भी बढ़ने लगी थी। अब उसके शरीर के उभार भी नुमायाँ होने लगे थे और अगर अब वह सुंदर नहीं दिखती तो असुंदर भी नहीं दिखती थी।

बेशक, सुनंदा अब जब कभी मनोज के निकट होती, मनोज का मन होता कि वह अपना हाथ फैलाकर उसे अपने घेरे में ले ले। उसके भीतर अब अकसर हिलोरें-सी उठती रहतीं। क्या सुनंदा के भीतर भी ऐसी ही हिलोरें उठती होंगी? कैसे कहे वह उससे अपने मन की बात? इस बीच सुनंदा को पता चल गया था कि मनोज अभी अविवाहित है और विवाह का इच्छुक है। उसने दो-एक बार बातों-ही-बातों में उसकी ओर अर्थ भरी नजरों से देखा था। मनोज के भीतर और खलबली मच गई थी। उसे लगा कि वह अब और संयम नहीं बरत सकेगा। एक दिन जाने कैसे उसने सहज ही अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया और फिर अपने से सटाकर उसे चूम लिया तथा कुछ देर तक लगातार चूमता ही रहा। सुनंदा को यह सब बड़ा स्वाभाविक लगा। वह उसमें लीन-सी होती जा रही थी। उसे लगा, जैसे कि उसके जीवन को एक नया अर्थ मिल गया है। उसमें उत्फुल्लता भरती जा रही थी।

बहुत साधारण ढंग से शादी हुई थी सुनंदा और मनोज की। कोई ताम-झाम नहीं था। कोर्ट ने उसपर अपनी मुहर लगा दी थी। सुनंदा के परिवारवाले तो बहुत ही खुश थे। मनोज के परिवारवालों ने भी कोई आपत्ति नहीं की थी। उसके माता-पिता तो एक अरसे से अमेरिका में ही रह रहे थे। भाई भी अमेरिका में ही था और माता-पिता से अलग रह रहा था। उसकी शादी में उनमें से कोई भी शामिल नहीं हो सका था। बस, खास-खास मित्र ही आए थे।

सुनंदा के लिए जो कुछ हुआ, अप्रत्याशित था। उसने केवल सुन ही रखा था कि किस्मत कभी-कभी अजब रंग दिखाती है। अब तो वह उसकी प्रत्यक्ष साक्षी थी। कहाँ पहले छोटी-से-छोटी चीज के लिए तरसना और कहाँ अब हर चीज की इफरात। जैसा चाहो वैसा खाओ। जैसा चाहो वैसा पहनो। बढ़िया-से-बढ़िया साड़ी, बढ़िया-से-बढ़िया सूट। जूतों का भी कोई शुमार नहीं। कहाँ पहले दो कमरे का एक छोटा सा फ्लैट और कहाँ अब चार-पाँच कमरों का डूप्लेक्स अपार्टमेंट! कहाँ पहले गरमी के दिनों में गरमी की तपिश से झुलसते हुए एक

ही पंखे से गुजारा करना और कहाँ अब कूलर या ए.सी. की ठंडक में सराबोर रहना! कहाँ पहले बस के पैसे बचाने के लिए कभी-कभी पैदल ही चल पड़ना, कहाँ अब दो कदम चलने से बचने के लिए भी कार का सहारा लेना! और कार तो वह अब खुद ही चलाती थी। पर इस सबके बावजूद उसके व्यवहार में कभी ओछापन नहीं दिखा। वह हमेशा संयत रहकर बात करती और दूसरों के प्रति सहानुभूति भी रखती। और हाँ, शादी हुए अभी एक वर्ष ही पूरा हुआ था कि वह एक बच्चे की माँ भी बन गई थी।

□

नहीं, सुनंदा को सुभद्रा से कोई गिला नहीं है, बल्कि वह तो उसमें रमी हुई-सी है। बस, जिस दिन वह बहुत देर से आती है या आती ही नहीं, उस दिन वह थोड़ा सा चिड़चिड़ा उठती है। अब छोटे बच्चे को गोद में लिये-लिये सब काम निपटें भी तो कैसे? वैसे छुट्टी पर तो वह स्वयं भी चल रही है। मनोज के वहाँ होने से उसे कोई दिक्कत आई भी नहीं और जब से वह मिसेज मनोज बनी है तब से उसका वकार भी तो बढ़ा है। वह छुट्टी से लौटे तो शायद उसकी पदोन्नति भी हो जाए।

खूब, जब वह स्वयं इतनी लंबी छुट्टी पर चल सकती है तब सुभद्रा को क्यों हक नहीं कि वह एक साथ पाँच-छह रोज की छुट्टी कर सके! पर दफ्तर में तो काम करनेवाले कई हैं। फिर कभी-कभी किसी को अस्थायी रूप से भी रख लिया जाता है। पर यहाँ घर के! क्या वह भी दो-चार नौकर रख ले! दो-चार नहीं तो एक तो रख ही सकती है, जो हर वक्त यहीं रहे। जैसे—पड़ोस में वह लड़की रहती है। वह बच्चे को भी सँभाल सकती है। जब वह स्वयं काम पर लौटेगी तब तो जरूरत पड़ेगी-ही-पड़ेगी। मनोज तो खुद कहते हैं कि ऐसी व्यवस्था होनी ही चाहिए।

एक-दो बार सुभद्रा से वह इस बारे में बात कर भी चुकी है। तब सुभद्रा बोली थी, ''अरे बीबीजी, मेरे ही अगर कोई बेटी होती तो मैं उसे फौरन यहाँ ले आती। किस बात की कमी होती उसे यहाँ पर! बढ़िया खाती, बढ़िया पहनती।''

''वाह सुभद्रा, वाह! बातों में तो तुम्हारा कोई जवाब नहीं।'' सुनंदा अपनी तारीफ सुनकर थोड़ा झेंपी थी।

''सच कहती हूँ, बीबीजी, कई घर देखे हैं। कुछ लोगों के तो छोटी सी चीज के लिए प्राण निकलने लगते हैं। वो हैं न परली तरफ वाली बीबीजी, एक कप चाय के लिए भी हुज्जत करती हैं—और एक आप हैं कि अगर मैं नाश्ते या खाने के टैम पहुँच जाऊँ तो आप अपने हिस्से का भी निकालकर दे देती हैं। भगवान् जानता है, हम आपको कितनी असीसें देते हैं।'' सुभद्रा उसके गुणगान पर उतर आई थी।

इस गुणगान से सुनंदा को अजब तरह की उलझन हो रही थी। वह मन-ही-मन खुश भी थी, पर साथ ही अपनी झेंप को भी सँभाल नहीं पा रही थी।

उधर सुभद्रा के मन में जैसे कि कोई तरंग उठी थी, ''बीबीजी, आप लोग अगर अपना हाथ खींच लें तो हमारा जाने क्या हो!''

''ऐसी बातें मत करो, सुभद्रा! पालनहार तो सबका वह है।'' सुनंदा ने आसमान की ओर इशारा किया।

''वो है तो सही, पर वह भी तो किसी के जरिए ही करता है!'' सुभद्रा एक ज्ञानी की तरह बोल रही थी, ''सच, बीबीजी, कोई माने या न माने, आज की महँगाई के महीने में चार-पाँच सौ से क्या होता है? सुबह से दोपहर तक मुश्किल से चार घर निपट पाते हैं। चार घरों से कितने मिलते हैं? पंद्रह सौ-दो हजार! अब खुद ही बताइए, इतने पैसों से क्या किसी का चूल्हा जल सकता है?''

''घर के और लोग भी तो काम करते होंगे?'' सुनंदा बात वहीं खत्म करना नहीं चाहती।

''करते हैं। मरद था। वह होने, न होने के बराबर। उसे गुजरे अब चार साल हो रहे हैं। बड़ा बेटा और बहू है। वे अपने अलग रहते हैं। उससे छोटेवाले की शादी ही की है। वह भी बार-बार कहता है कि अलग हो जाएँगे। उससे छोटे दो हैं। एक बारह बरस का है, दूसरा सात बरस का। पहले ये दोनों एक स्कूल में जाने लगे थे, अब जाने का नाम नहीं लेते।''

''तुम्हारा यह बड़े से छोटा बेटा क्या काम करता है?''

''बिजली का।''

''और बहू?''

''वह एक ट्रांजिस्टर फैक्टरी में है। बारह सौ रुपए माहवार लाती है। उसी में मरी जा रही है। कहती है—झुग्गी में नहीं रहेंगे, कॉलोनी में रहेंगे। ऊँची जाति की है।''

''कौन जाति?''

''ब्राह्मण है। अब जब भी हम गाँव जाएँगे, हमें डाँड़ भरना पड़ेगा।''

''तुम्हारा मतलब दंड से है?''

''हाँ-हाँ, वही। हम पासी हैं, हरिजन हैं। ऊँची जाति में शादी की है, इसलिए पाँच हजार डाँड़ देना होगा। नीची जाति की होती तो बीस-पच्चीस हजार तक देना पड़ता।''

''बाप रे, यह कैसा न्याय है?'' सुनंदा उत्कंठित हो उठी है।

''बीबीजी, ये पैसा हमारी पंचायत में जाता है। उससे हमारी ही भलाई के काम होते हैं। जैसे शादी-ब्याह के लिए बड़े-बड़े बरतन खरीदना, कोई बहुत गरीब है तो उसकी बेटी की शादी में मदद कर देना।''

''यह तो अच्छा है।'' सुनंदा भीतर-ही-भीतर कहीं संतोष महसूस कर रही है।

''बीबीजी, हमारी बहुत जमीन है गाँव में। छह बीघा तो होगी। चार-चार बीघा तो इंदिरा गांधी हमारे हर परिवार को दिए रहीं। ये चार भाई थे। एक-एक बीघा चारों भाइयों में बँट गया। ये तो पूरे हो गए और जमीन मेरे नाम से हुई नहीं। इसलिए झंझट में पड़ी हुई है। सुना है, वहाँ आम के पाँच पेड़ हैं और फलों से

लदे पड़े हैं। दो-ढाई लाख तो कहीं नहीं गए। पर फैसला हो कैसे!''

''तुम गाँव लौटना चाहोगी?'' सुनंदा के मन में ऐसे ही प्रश्न उठा।

''अब क्या बताएँ, बीबीजी! गाँव तो गाँव ही है। बच्चा लोग खेती-बाड़ी करेंगे नहीं। पानी की किल्लत तो रहती ही है। पर हाँ, हमारे यहाँ बिहारवाली बात नहीं। हम पूर्वी हैं। कोई हमारे साथ ऊँच-नीच नहीं कर सकता। जो कुछ होता है, बिहार में ही होता है।''

''गाँव में काम क्या करते थे तुम लोग?'' सुनंदा पहले की तरह ही उत्कंठित है।

''बहुत पहले ताड़ी निकालते थे।''

''ताड़ी से तो शराब बनती होगी न?''

''नहीं, शराब नहीं बनती। यह दवा का काम देती है। सवेरे खाली पेट, बासी मुँह लेने से पेट के कीड़े मर जाते हैं; आँखों की कमजोरी भी दूर होती है।''

उस दिन सुनंदा और सुभद्रा के बीच चाहे बातचीत काफी लंबी हो गई थी, पर सुनंदा के भीतर कुछ प्रश्न फिर भी कुलबुलाते रहे थे। सुभद्रा दरअसल मनोज के यहाँ एक अरसे से काम करती आ रही थी और मनोज के शादी कर लेने पर भी ज्यों-की-त्यों बनी रही थी। फिर सुनंदा को उसमें कहीं कोई खोट नजर भी तो नहीं आया था। मनोज ने उसके बारे में बस इतना ही कहा था, 'बड़ी भरोसे की औरत है।'

'भरोसे की ही तो चाहिए। वरना क्या पता, आपको ही अपने साथ चिपटा ले।' सुनंदा चुटकी लेने पर उतारू थी।

'वाह, अब तक तो चिपटा न सकी, अब क्या...' फिर सहज ही बोला था, 'मैं अपने यहाँ के लोगों को समझ नहीं पाया—एक तरफ तो अपनी ऊँची जाति और ऊँचे खानदान की दुहाई देते हैं और दूसरी तरफ किसी भी औरत पर टूट पड़ने को तैयार रहेंगे। आमतौर पर गरीब औरतें ही इनका शिकार बनती हैं, वे चाहे किसी भी जाति की हों। अगर वैसे इनसे कहो कि उनसे शादी कर लो, तो इनके सभी उच्च संस्कार जाग जाएँगे।'

सुनंदा देख रही थी कि मनोज संजीदा हो गया है। इसलिए उसने और चुटकी नहीं ली, बल्कि उसके निकट होते-होते उससे पूरी तरह सट गई और फिर दोनों के बीच प्यार की हिलोर इतनी तेजी से उठी कि उन्हें पूरी तरह भिगो गई।

□

एक रोज बारिश बड़े जोरों की हुई, जिससे चारों ओर पानी-ही-पानी बिछा नजर आता था। उस रोज सुनंदा को उम्मीद नहीं थी कि सुभद्रा काम पर आएगी; पर जैसे ही बारिश थमी, सुभद्रा भीगी हुई आती दिखी। उसके कपड़े उसके शरीर से चिपके हुए थे। भीगे कपड़ों में वह उसे कमनीय-सी लगी। चार-चार बच्चों को जनने के बाद भी वह तन्वंगी दिखती थी। उसे भी अगर अच्छी परवरिश मिलती तो वह भी क्या किसी से कम होती! मेधा तो हर व्यक्ति के भीतर छिपी रहती है न, उसे प्रस्फुटित होने का मौका तो मिले! वह अपने काम में तो दक्ष है न!

''मैं तो सोचे बैठी थी कि मैंने आज छुट्टी की है तो तुम भी करोगी ही!'' सुनंदा ने मुसकराते हुए कहा।

''अरे बीबीजी, छुट्टी कर भी लेती तो क्या होना था! जो होना था, वह तो हो लिया।'' सुभद्रा ने रुआँसी शक्ल बना ली थी।

''क्या हुआ, सुभद्रा?'' सुनंदा संशय से भर उठी थी।

''होना क्या था, नाले का सारा पानी झुग्गी में चला आया। नीचे जितना भी सामान पड़ा था, सब बरबाद हो गया।'' सुभद्रा ने अपना कष्ट सामने रखा।

''पानी जब आ रहा था तो पता नहीं चला?'' सुनंदा का संशय ज्यों-का-त्यों बना हुआ था।

''उम्मीद नहीं थी कि इतना पानी आएगा। कल गरमी भी कैसा जुल्म ढा रही थी। पूरे बदन में आग लगी हुई थी। आँखें अलग जल रही थीं। कोई ऐसी जगह भी नहीं हमारे पास जहाँ वक्त-बेवक्त नहा लें। बस, सवेरे चार बजे नल पर जो नहा लिया सो नहा लिया। भला हो संडास की गाड़ीवालों का। हम औरतों से आठ आने लेते हैं और हम वहीं निपट लेती हैं। गाड़ी न होती तो रेलवे की लाइनों पर जाना पड़ता।...रात को जब बारिश आई तो झुग्गी टपकने लगी। चलो, थोड़ी ठंडक तो हुई, हमने सोचा! पर तमाम रात समझो, बैठकर ही गुजारी। जगह-जगह बरतन रखे।...पहले तो, बीबीजी, मैं झुग्गी की छत पर सो रही थी। सीमेंट की चादरें तपी हुई तो बहुत थीं, पर झुग्गी के भीतर तो तंदूर ही तप रहा था। मेरा लड़का और बहू बहुत ही परेशान थे। हर किसी को गाली दे रहे थे। छोटे बच्चे न जाने कैसे कुनमुनाते हुए सोए रहे। अब ये चादरें न जाने कैसे क्रेक हो गईं! सुबह-शाम इधर-उधर के बच्चे भी तो पतंगों के पीछे झुग्गियों की छतों पर दौड़ते फिरते हैं!'' सुभद्रा इतनी लंबी बात जाने कैसे इतनी जल्दी कह गई। शायद वह अपनी पूरी व्यथा-कथा कह डालना चाह रही थी।

''कितनी बड़ी है झुग्गी तुम्हारी?'' सुनंदा ने यों ही पूछ लिया।

''बस समझो, इस कमरे की चौथाई। मैं ही जानती हूँ, कैसे बनी थी यह झुग्गी। कहाँ-कहाँ से लड़के पुराने ईंटें इकट्ठी करके लाए थे। किसी से रेड़ी माँग ली थी उन्होंने—तब ये खुद भी जिंदा थे—और तमाम इलाके में घूमते फिरे थे। एक-दो बार तो कलपते हुए भी लौटे थे। किसी ने इनपर हाथ उठा दिया था। अब जवान लड़के किसी तरह सब्र का घूँट पी गए। पलटकर मारते तो लफड़ा खड़ा हो जाता। इधर लड़के ईंटें ले आए, उधर मेरे मरद ने उन्हें मिट्टी-गारे से खुद ही चिन दिया। काम करते थे तो अच्छा करते थे। वक्त अच्छा था। एक तरह से मुफ्त में ही झुग्गी खड़ी हो गई। अब तो हजारों रुपए लग जाते हैं।'' सुभद्रा अपने अतीत में खोई तीव्रता से बोले जा रही थी।

''सुना है, झुग्गियों में बहुत उलटे-सीधे

धंधे भी चलते हैं?'' सुनंदा उसे सहज करना चाह रही थी और साथ-साथ यह भी सोच रही थी कि वह उसकी मदद कैसे करे।

''हमारी झुग्गियों में कोई गलत काम नहीं होता, बीबीजी।'' सुभद्रा ने पलटकर जवाब दिया था, ''हमारे प्रधान के कान में अगर इसकी भनक भी पड़ जाए तो वह झुग्गी ही तुड़वा दे।'' फिर वह रुककर बोली थी, ''हाँ, लाइन पार साँसियों के यहाँ बहुत कुछ चलता है।''

''बहुत कुछ से तुम्हारा मतलब?'' सुनंदा एकदम उत्सुक हो उठी थी।

''शराब की भट्टियाँ लगा रखी हैं न उन्होंने। खूब पैसा पीटते हैं। पुलिस को भी खूब खिलाते हैं। हमारे यहाँ की कुछ औरतें वहाँ काम करने जाती हैं। उन्हें वे डेढ़ सौ रुपए दिहाड़ी देते हैं।'' सुभद्रा की आँखों में अब कुछ-कुछ चमक आ रही थी। गरमी का मौसम होने की वजह से उसके कपड़े भी सूखते जा रहे थे।

''डेढ़ सौ रुपए दिहाड़ी!'' सुनंदा की उत्सुकता अब अचंभे में बदल गई थी। महीने में उसे खुद को जो तनख्वाह मिलती है, वह भी तो दिहाड़ी के हिसाब से इससे कुछ ही ज्यादा बैठती है।

''हाँ, बीबीजी, बहुत पैसा देते हैं वो!'' सुभद्रा अपनी बात पर कायम थी।

''काम क्या करती हैं वे वहाँ?'' सुनंदा अभी तक उस अचंभे से बाहर नहीं आई थी।

''तमाम तरह के काम हैं। ढेरों बरतन साफ करना, कपड़ों के गट्ठर पे गट्ठर धोना, उनके बच्चों को नहलाना। कोई अकेला घर तो होता नहीं है, पूरा कुनबा होता है। अब इससे कम और क्या लेंगी!'' सुभद्रा अब धीरे-धीरे सहज होती जा रही थी।

''कुछ और भी करती होंगी?'' सुनंदा ने शरारत भरे अंदाज में पूछा था।

''हाँ, लाइन पार साँसियों के यहाँ बहुत कुछ चलता है।''

''बहुत कुछ से तुम्हारा मतलब?'' सुनंदा एकदम उत्सुक हो उठी थी।

''शराब की भट्टियाँ लगा रखी हैं न उन्होंने। खूब पैसा पीटते हैं। पुलिस को भी खूब खिलाते हैं। हमारे यहाँ की कुछ औरतें वहाँ काम करने जाती हैं। उन्हें वे डेढ़ सौ रुपए दिहाड़ी देते हैं।''

''डेढ़ सौ रुपए दिहाड़ी!'' सुनंदा की उत्सुकता अब अचंभे में बदल गई थी।

''हाँ, बीबीजी, बहुत पैसा देते हैं वो!''

''काम क्या करती हैं वे वहाँ?''

''तमाम तरह के काम हैं।

''अरे नहीं, बीबीजी, सबके बड़े-बड़े बच्चे हैं। फिर जब कुछ और भी करना है तब इतनी मेहनत-मशक्कत क्यों?'' सुभद्रा उनपर किसी तरह की आँच आने देना नहीं चाहती थी। इस बीच वह रसोई में जा पहुँची थी और बरतन मलते-मलते बतियाए भी जा रही थी। उधर सुनंदा ने उसके लिए चाय तैयार कर ली थी और रात की जो रोटी व सब्जी बची थी, उसे फ्रिज से निकालकर गरम करते हुए उससे कह रही थी कि वह पहले नाश्ता कर ले, फिर काम शुरू करे। फिर वह भीतर से उसके लिए एक साड़ी, ब्लाउज और पेटीकोट भी ले आई थी।

''लो, यह पहन लेना।'' उसने उससे कहा था।

सुभद्रा की आँखों की चमक अब और बढ़ गई थी। उसके बेरंगत चेहरे पर कुछ-कुछ रंगत भी आ गई थी। वह अपने हाथ धोकर, बाहर कमरे में पड़ी छोटी बेंत की कुरसी पर बैठकर नाश्ता करने लगी थी।

''सच बीबीजी, बड़ी भूख लगी थी।'' अपने मुँह में कौर डालते हुए सहसा यह वाक्य उसके भीतर से बाहर आ गया था।

''क्या तुम लोग सुबह नाश्ता नहीं करते?'' सुनंदा के मन में फिर प्रश्न उठा था। दरअसल, इन लोगों के बारे में उसके मन में ढेरों प्रश्न थे। शायद वह मन-ही-मन इनसे अपने विवाह पूर्व जीवन की तुलना कर रही थी।

''सिर्फ मरद लोगों के लिए बनता है। हमें तो आप लोगों से मिलता-ही-मिलता है। बस, जो बनता है, वह रात को ही बनता है। वो भी कई बार आप लोगों के यहाँ का बचा हुआ आप खुद ही दे देती हैं। कपड़ा भी नहीं बनाना पड़ता।'' सुभद्रा एकदम साफगोई से काम ले रही थी।

उस रोज दिन कुछ ज्यादा ही चढ़ गया था। सुभद्रा को डर था कि उसे कहीं, किसी दूसरे घर से, कुछ सुनने को न मिल जाए। उस रोज वह सीधे पहले यहीं चली आई थी।

☐

खैर, जब सुभद्रा छुट्टी करने को कह गई थी तो उसे करनी ही थी। उससे अगले दिन जब वह आई तो उसके माथे पर पट्टी बँधी थी। उसपर दवाई का लाल-लाल निशान भी था।

''सुभद्रा, यह क्या हुआ?'' सुनंदा को उसे इस हालत में देखकर थोड़ी हैरत हुई।

''मत पूछो, बीबीजी। कल तो हद ही हो गई। वो मेरा बेटा है न, जिसकी पिछले दिनों शादी की थी, एकदम तूफान है। एक तो जो कमाता है, सब अपने ऊपर खर्च कर डालता है; दूसरे, कल जिद पकड़ बैठा कि टी.वी. लेकर आओ। बोला, 'हर झुग्गी में टी.वी. है, सिर्फ हमारी झुग्गी में ही क्यों नहीं है?' अब हम कहाँ से टी.वी. लाएँ?'' सुभद्रा की मानसिक

पीड़ा उसकी आँखों से टपक रही थी। उसने फिर कहना शुरू किया—

"मैंने कहा, 'किसी से किस्तों पर ले आओ। एकबारगी देना तो मुश्किल होगा। वो परेवाली बीबीजी कह भी रही थीं कि वो अपना पुराना टी.वी. निकालना चाहती हैं।' पर वो बोला, 'पैसा एक नहीं दूँगा।'...बस, ऐसे ही बात बढ़ गई और उसने पास पड़ी फट्टी मेरे माथे पर दे मारी। मेरे तो बीबीजी, एकदम होश उड़ गए। आँखों के सामने अँधेरा छा गया। शायद मैं कुछ देर तक बेहोश भी पड़ी रही। फिर खुद ही किसी को बुलाकर लाया और मेरी पट्टी करवाई। अब ऐसी हैं आज की औलाद! दोनों छोटे भी तो कल यही करेंगे!"

सुनंदा सुभद्रा की बात पर अवाक् थी। बोली, "जब तुम्हारे दोनों बड़े लड़के ब्याहे जा चुके हैं और तीसरा भी जल्दी ही कमाने लायक हो जाएगा, तब तुम छोटे बच्चे को लेकर कहीं बैठ क्यों नहीं जातीं? अभी तो ऐसी बड़ी भी नहीं लगती हो।"

"बस, बच्चे पर ही तो बात आकर रुकती है। एक बार किसी ने कहा भी था, पर बच्चे नहीं माने। एक बात और भी बीबीजी, मैं और बच्चे पैदा करने के झंझट में नहीं पड़ना चाहती।" सुभद्रा के चेहरे पर अब एक प्रकार की अकुलाहट दौड़ने लगी थी, "आगे-आगे अब बुढ़ापा ही तो आना है। ये बच्चे भी जब छोड़ जाएँगे तब पड़ी रहूँगी आप जैसे किसी के घर में।" सुभद्रा के स्वर में अजीब बेचारगी थी।

सुभद्रा की इस बेचारगी ने सुनंदा को जैसे एक प्रकार की उलझन में डाल दिया था। क्या इस स्थिति का यही समाधान है? कहीं एक दिन सुभद्रा को अपनी झुग्गी के सामने भिखारिन बनकर तो नहीं बैठना पड़ेगा?

□

एच-२५९, डी.डी.ए. फ्लैट्स,
नारायणा विहार, नई दिल्ली-११००२८

कविताएँ

✍ **राहुल झा**

शहर में ...

यहाँ सुख है
छाया के सदृश अर्थहीना...

उलझी हुई
मनस-गाँठें घनेरी हैं
सब गलियाँ अँधेरी हैं
आडंबरों की सहज तीखी आँच में पकती
मुसकानें हैं
शंभु धनु-सा टूटा हुआ व्यक्तित्व है...

मिटने की सीमा-रेखा पर
'कला' का मरण-गीत है
रागों की ठहरी गूँज है
आँसू के अनगिन मजार हैं...

सुंदर चीजें ही मिटती हैं सबसे पहले यहाँ
जैसे कि फूल, चाँदनी, रूप...टयार!

□

सुर्खियों में ...

जिनकी भावनाएँ वेश्या बन गई हैं
जिनकी दिलचस्पी
विस्फोट की रूह में है
जिनके पाँव के नाखून
धरती को लहूलुहान करते हैं...
जिनके चेहरे का रंग
मौसम के तेवर को भी झुठलाता है

जिनकी अश्लीलता में भी
कला और दर्शन का मर्म का ढूँढ़ा जाता है...
जो झूठे महोत्सव के
झूठे रंगों में
हठखेलियाँ (...!) कर रहे हैं...
वे,
सुर्खियों में हैं...

□

सुख

घूमती हुई चाक पर
मिट्टी का एक लोंदा...
जिसे दस दिशाओं की उँगलियाँ
देती हैं आकार
धीरे-धीरे...

□

तुम्हारी छुवन

तुम्हारी छुवन के
दिपदिपाते अर्थ में
झर रहा हूँ
हवा के रूह में
खुशबू की बारिश की तरह...

□

द्वारा—श्री अनिरुद्ध सिन्हा,
गुलजार पोखर,
मुंगेर-८११२०१